पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा शब्दशक्ति
प्रकाशन एवं बहुउद्देशीय संस्था
www.antrashabdshakti.com

शब्द
से संवेदना तक...
लेखन से
परिवर्तन तक...

हिन्दी
हमारी पहचान
हमारी शक्ति

'समसामयिक प्रश्नों पर आपकी कलम'

(लेख प्रतियोगिता)

विचार...
चिंतन...
संवाद...
और
एक बेहतर
कल की ओर...

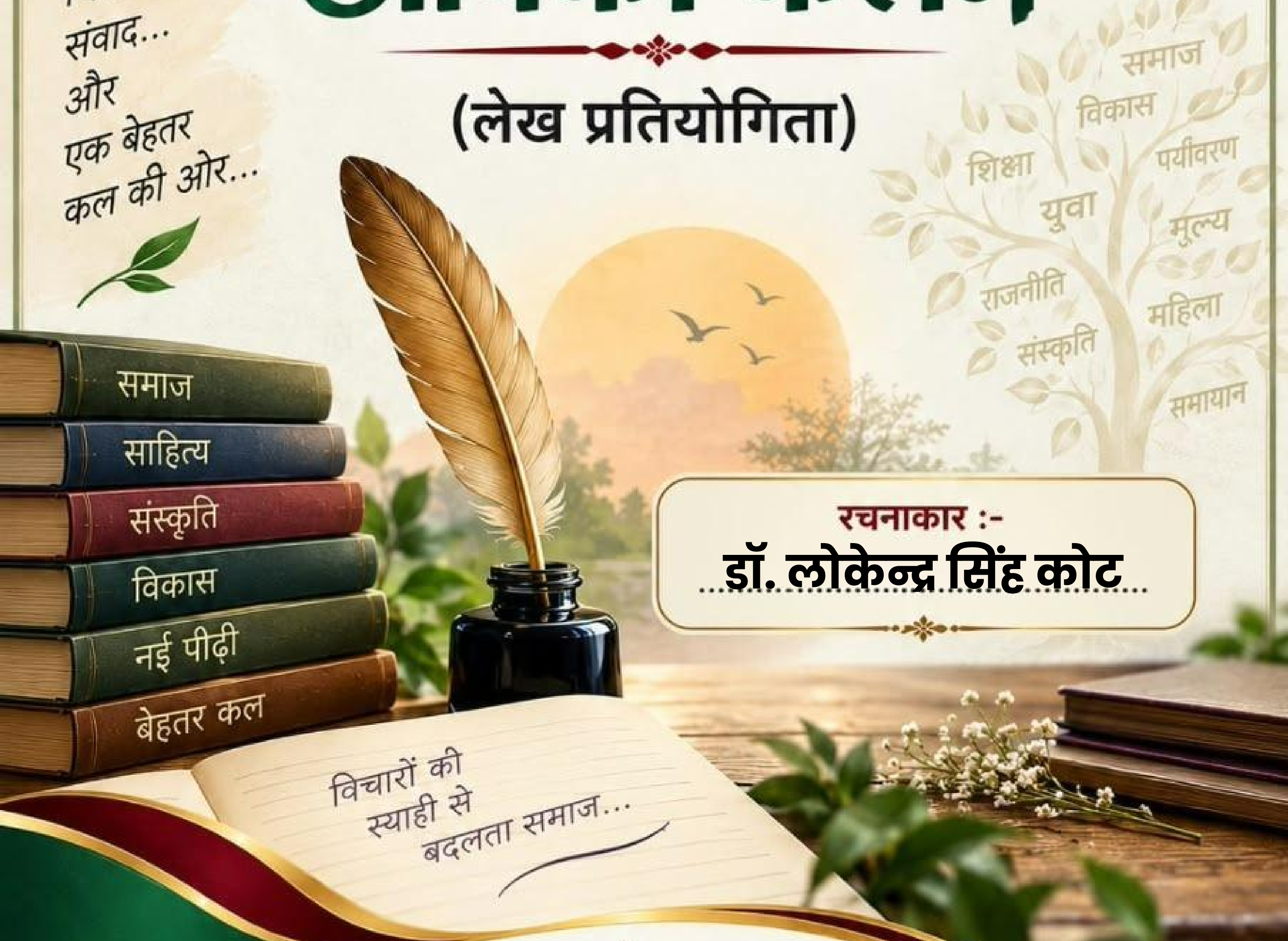

रचनाकार :-
डॉ. लोकेन्द्र सिंह कोट

आयोजक:-
अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी (म.प्र.)

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा शब्दशक्ति
प्रकाशन एवं बहुददेशीय संस्था
www.antrashabdshakti.com

कलम की शक्ति, समाज की दिशा

हिन्दी हमारी पहचान हमारी शक्ति

शब्द से संवेदन तक...
लेखन से परिवर्तन तक...

संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
तकनीकी संपादक : Webcoodee.com
मुख्य कार्यालय : 15 नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाधाट (म.प्र.) 481331

Antrashabdshaktiprakashan

संपर्क : 9009423393
ईमेल : antrashabdshakti@gmail.com
वेबसाइट : www.antrashabdshakti.com

वैधानिक सूचना

पुस्तक में प्रकाशित सभी रचनाएँ संबंधित रचनाकारों की मौलिक अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रत्येक रचना में व्यक्त विचार, कथ्य एवं अभिमत के लिए संबंधित रचनाकार स्वयं उतरदायी हैं। रचनाओं के चयन एवं प्रकाशन का उद्देश्य साहित्यिक अभिव्यक्ति को मंच प्रदान करना एवं हिन्दी लेखन को प्रोत्साहित करना हैं।

हिन्दी से ही है पहचान...

विचार...
संवाद...
समाज...
और एक बैहतर कल...

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

लेख प्रतियोगिता

लेखक/लेखिका – डॉ. लोकेन्द्र सिंह कोट

अस्पताल, वृद्धाश्रम, जेल और अदालतें बढ़ रही हैं

क्या समाज सचमुच विकसित हो रहा है?

अस्पताल, वृद्धाश्रम, जेल और अदालतें बढ़ रही हैं—क्या समाज सचमुच विकसित हो रहा है?

विकास की सरकारी पुस्तकों में प्रतिव्यक्ति आय, सकल घरेलू उत्पाद, चौड़ी सड़कें, ऊँची इमारतें, कारखाने, विश्वविद्यालय और अस्पताल प्रगति के प्रमाण माने जाते हैं। परंतु मनुष्य के जीवन की पुस्तक में विकास की परिभाषा कुछ और हो सकती है। वहाँ प्रश्न यह नहीं है कि शहर में कितने अस्पताल बन गए, बल्कि यह है कि लोग इतने बीमार क्यों हो रहे हैं। प्रश्न यह नहीं कि मानसिक स्वास्थ्य संस्थान कितने बढ़े, बल्कि यह है कि मनुष्य का मन इतना अकेला, चिंतित और अवसादग्रस्त क्यों हुआ। वृद्धाश्रमों की चमकती इमारतें व्यवस्था की उपलब्धि हो सकती हैं, किंतु क्या वे परिवार की पराजय का स्मारक भी नहीं हैं? जेलों का विस्तार कानून-व्यवस्था की तैयारी बता सकता है, पर भरी हुई जेलें समाज के भीतर बढ़ती हिंसा, विषमता और न्यायिक विलंब का प्रश्न भी उठाती हैं।

सच्चे विकास का आदर्श वह समाज होना चाहिए जिसमें अस्पतालों की आवश्यकता घटे, मानसिक स्वास्थ्य संकट कम हों, बुजुर्ग परिवार में सम्मानपूर्वक रहें, अपराध घटें, जेलें खाली हों और विवाद अदालत की चौखट तक पहुँचने से पहले संवाद और सामाजिक विवेक से सुलझ जाएँ। पर भारत के उपलब्ध आँकड़े बताते हैं कि हम इस आदर्श से अभी काफी दूर हैं।

अस्पताल बढ़ना विकास है या बीमारी का विस्तार?

किसी देश में पर्याप्त अस्पताल होना निस्संदेह आवश्यक है। अस्पतालों की संख्या बढ़ना स्वास्थ्य सेवाओं की बेहतर उपलब्धता और राज्य की जिम्मेदारी का संकेत भी हो सकता है। इसलिए केवल अस्पताल बढ़ने को सामाजिक पतन नहीं कहा जा सकता। वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या अस्पतालों के बढ़ने के साथ बीमारी का बोझ घट रहा है, प्राथमिक स्वास्थ्य मजबूत हो रहा है और लोग कम बीमार पड़ रहे हैं?

केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रोफाइल–2023' के अनुसार 31 दिसंबर 2022 को भारत में 36,626 सरकारी अस्पताल थे। इनमें 30,125 ग्रामीण और 6,501 शहरी अस्पताल थे। इनके पास कुल 8,40,455 बिस्तर उपलब्ध थे। ग्रामीण भारत, जहाँ देश की बड़ी आबादी रहती है, वहाँ केवल 3,07,552 बिस्तर थे, जबकि शहरी अस्पतालों में 5,32,903 बिस्तर उपलब्ध थे।

यह असंतुलन बताता है कि समस्या केवल अस्पतालों की संख्या नहीं, बल्कि उनके स्थान, गुणवत्ता, मानव संसाधन और सामान्य व्यक्ति की पहुँच की भी है। अस्पताल तब विकास के प्रतीक हैं जब वे समय पर उपचार दें; किंतु यदि प्रदूषण, तनाव, अस्वास्थ्यकर भोजन, शारीरिक निष्क्रियता और जीवनशैली-जनित रोगों को रोकने के स्थान पर हम केवल नए अस्पताल बनाते जाएँ, तो यह वैसा ही है जैसे फर्श पर लगातार पानी फैलता रहे और हम पोछों की संख्या बढ़ाने को उपलब्धि मान लें।

स्वस्थ समाज का श्रेष्ठ संकेत अस्पतालों की कमी नहीं, बल्कि अस्पताल जाने की आवश्यकता में कमी है। इसके लिए स्वच्छ हवा, सुरक्षित पानी, पौष्टिक भोजन, नियमित व्यायाम, तनाव-नियंत्रण, सामाजिक सुरक्षा और मजबूत प्राथमिक स्वास्थ्य व्यवस्था को विकास के केंद्र में रखना होगा।

मानसिक स्वास्थ्य संस्थान नहीं, स्वस्थ मन चाहिए

'पागलखाना' शब्द अब न तो वैज्ञानिक है और न मानवीय। उचित शब्द मानसिक स्वास्थ्य संस्थान या मनोरोग चिकित्सालय है। स्वास्थ्य मंत्रालय के राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रोफाइल के अनुसार 31 दिसंबर 2022 तक देश में 41 सरकारी मानसिक स्वास्थ्य संस्थान सूचीबद्ध थे। लेकिन केवल संस्थानों की संख्या भारत के मानसिक स्वास्थ्य संकट की गंभीरता नहीं बताती।

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण के आधार पर स्वास्थ्य मंत्रालय की प्रशिक्षण सामग्री बताती है कि देश में किसी मानसिक विकार की तात्कालिक व्यापकता 10.6 प्रतिशत तथा जीवनकाल व्यापकता 13.7 प्रतिशत पाई गई।

विभिन्न मानसिक विकारों में उपचार-अंतर 70 से 92 प्रतिशत तक था। सामान्य मानसिक विकारों में लगभग 85 प्रतिशत और गंभीर मानसिक विकारों में 73.6 प्रतिशत लोगों तक अपेक्षित उपचार नहीं पहुँच पाया।

ये आँकड़े बताते हैं कि समस्या मानसिक अस्पतालों के भरने से कहीं बड़ी है। करोड़ों लोग ऐसे हो सकते हैं जो चिंता, अवसाद, नशे, अनिद्रा, अकेलेपन या भावनात्मक संकट से जूझ रहे हैं, लेकिन किसी चिकित्सालय तक नहीं पहुँचते। मानसिक स्वास्थ्य संस्थानों में कम रोगी होना भी हमेशा स्वस्थ समाज का प्रमाण नहीं होगा; वह कलंक, आर्थिक कठिनाई और उपचार की अनुपलब्धता का परिणाम हो सकता है।

सकारात्मक बात यह है कि जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम अब 767 जिलों के लिए स्वीकृत है। इसका उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं को बड़े संस्थानों में सीमित रखने के बजाय समुदाय और सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं से जोड़ना है। वास्तविक विकास उस दिन होगा जब मानसिक पीड़ा को छिपाया नहीं जाएगा, विद्यालयों में भावनात्मक शिक्षा होगी, कार्यस्थलों पर अमानवीय प्रतिस्पर्धा घटेगी और परिवार में ऐसा संवाद बचेगा जिसमें कोई व्यक्ति बिना डर के कह सके—“मैं ठीक नहीं हूँ।”

वृद्धाश्रम—सेवा की आवश्यकता, लेकिन परिवार के लिए चेतावनी

वृद्धाश्रमों के बारे में कोई निष्कर्ष निकालते समय अत्यंत संवेदनशीलता चाहिए। अनेक निराश्रित, निर्धन, संतानविहीन अथवा देखभाल पर निर्भर वरिष्ठ नागरिकों के लिए अच्छी गुणवत्ता वाला वृद्धाश्रम जीवनरक्षक व्यवस्था है। इसलिए हर वृद्धाश्रम को परिवार-विघटन का प्रमाण मानना अनुचित होगा।

फिर भी इसकी बढ़ती आवश्यकता हमें सामाजिक परिवर्तन की दिशा अवश्य दिखाती है। वर्ष 2021 में सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय 551 वृद्धाश्रमों एवं सतत देखभाल गृहों को सहायता दे रहा था, जिनमें 16,290 निराश्रित बुजुर्गों को आवास मिल रहा था। अगस्त 2025 तक केंद्र की योजना के अंतर्गत 29 राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में 696 वरिष्ठ नागरिक गृह संचालित होने की जानकारी दी गई। उसी वित्तीय वर्ष में 84 नए गृह भी चयनित किए गए।

इन संख्याओं की सीमा समझना आवश्यक है—ये मुख्यतः केंद्रीय योजना के अंतर्गत संचालित अथवा समर्थित गृह हैं, देश के सभी सरकारी, निजी, धार्मिक और परोपकारी वृद्धाश्रमों की पूर्ण गणना नहीं। इसलिए इनके आधार पर पूरे देश में वृद्धाश्रमों की सटीक वृद्धि-दर निकालना उचित नहीं होगा। फिर भी सहायता प्राप्त गृहों की बढ़ती संख्या यह बताती है कि संस्थागत वृद्ध-देखभाल की मांग बढ़ रही है।

इसके पीछे केवल संतानों की संवेदनहीनता नहीं, बल्कि बढ़ती आयु, छोटे परिवार, पलायन, कामकाजी दंपती, गंभीर बीमारियाँ, मनोभ्रंश और पेशेवर देखभाल की आवश्यकता भी है। अतः प्रश्न वृद्धाश्रम बंद करने का नहीं, ऐसी व्यवस्था बनाने का है जिसमें बुजुर्ग को विकल्प मिले—परिवार आधारित देखभाल, घरेलू परिचर्या, सामुदायिक दिन-देखभाल, आर्थिक सुरक्षा और आवश्यकता होने पर सम्मानजनक आवासीय सुविधा।

जिस समाज में वृद्ध को अनुपयोगी समझा जाता है, वहाँ विकास का शोर चाहे जितना हो, सभ्यता मौन होकर रोती है।

भरी हुई जेलें—अपराध से अधिक न्याय की प्रतीक्षा

भारत की जेलों की स्थिति सबसे गंभीर चेतावनियों में से एक है। गृह मंत्रालय द्वारा एनसीआरबी के आँकड़ों पर आधारित संसदीय उत्तर के अनुसार 31 दिसंबर 2022 को देश की जेलों की स्वीकृत क्षमता 4,36,266 थी, जबकि उनमें 5,73,220 कैदी बंद थे। इसका अर्थ लगभग 131.4 प्रतिशत अधिभोग है—अर्थात प्रत्येक 100 स्थानों पर करीब 131 बंदी।

वर्ष 2016 में देश की जेलों में लगभग 4,33,003 कैदी थे, जिनमें 2,93,058 विचाराधीन और 1,35,683 दोषसिद्ध कैदी थे। वर्ष 2022 में कुल कैदियों की संख्या 5.73 लाख से अधिक हो गई और विचाराधीन कैदियों की संख्या 4,34,302 तक पहुँच गई। इस प्रकार छह वर्षों में कुल कैदियों की संख्या लगभग 32 प्रतिशत, जबकि विचाराधीन कैदियों की संख्या करीब 48 प्रतिशत बढ़ी।

सबसे चिंताजनक बात यह है कि वर्ष 2022 के लगभग तीन-चौथाई कैदी विचाराधीन थे। ये वे लोग हैं जिनके मामलों में अंतिम दोषसिद्धि नहीं हुई थी। इसका अर्थ यह नहीं कि वे सभी निर्दोष हैं, लेकिन यह अवश्य है कि न्यायिक निर्णय से पहले ही बड़ी संख्या में लोग लंबे कारावास, आजीविका की हानि, पारिवारिक विघटन और सामाजिक कलंक का सामना कर रहे हैं।

भरी जेलें केवल अपराध बढ़ने का संकेत नहीं होतीं। वे जमानत न मिल पाने, निर्धनता, कानूनी सहायता की कमी, पुलिस अनुसंधान में देरी और न्यायालयों के बोझ का भी परिणाम होती हैं। विकसित न्याय-व्यवस्था की कसौटी अधिक जेलें बनाना नहीं, बल्कि निष्पक्ष और शीघ्र न्याय, अपराध की रोकथाम, पुनर्वास तथा गैर-हिंसक अपराधों में विवेकपूर्ण वैकल्पिक दंड होना चाहिए।

अदालतों में पाँच करोड़ से अधिक लंबित मामले

राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड के 5 सितंबर 2026 के गतिशील आँकड़ों में जिला और अधीनस्थ न्यायालयों में लगभग 5.18 करोड़ मामले लंबित दिखाई देते हैं। इनमें लगभग 47.73 लाख मामले दस वर्ष से अधिक पुराने हैं। उच्च न्यायालयों में लगभग 64.85 लाख मामले लंबित हैं, जिनमें लगभग 14.89 लाख मामले दस वर्ष से अधिक पुराने हैं। सर्वोच्च न्यायालय के डैशबोर्ड पर भी लगभग 95 हजार मामले लंबित दर्ज थे।

इस तरह न्यायपालिका के तीनों स्तरों को मिलाकर लंबित मामलों की संख्या मोटे तौर पर 5.8 करोड़ से अधिक बैठती है। ये डैशबोर्ड निरंतर बदलते रहते हैं, इसलिए इन आँकड़ों को एक दिन की स्थिति के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

मुकदमों की संख्या बढ़ने का एक सकारात्मक पक्ष भी है—नागरिक अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक हुए हैं और न्यायालय तक पहुँच बढ़ी है। लेकिन जब न्याय मिलने में वर्षों या दशकों का समय लगे, मुकदमे की लागत परिवार की बचत निगल जाए और निर्णय आने तक एक पीढ़ी बदल जाए, तब अदालत तक पहुँच स्वयं न्याय की गारंटी नहीं रहती।

मुकदमों की अधिकता यह भी बताती है कि परिवार, समुदाय और प्रशासन के स्तर पर संवाद तथा विवाद-निपटान की क्षमता कमजोर हुई है। भूमि, विवाह, उत्तराधिकार, रोजगार और छोटे आर्थिक विवाद यदि समय रहते मध्यस्थता से सुलझ जाएँ, तो अदालतों पर बोझ काफी कम हो सकता है।

क्या आँकड़े समाज के पतन की घोषणा करते हैं?

इन आँकड़ों से यह कहना सरल होगा कि समाज लगातार पतन की ओर जा रहा है, लेकिन ऐसा निष्कर्ष अधूरा होगा। बढ़ती जनसंख्या, लंबी होती जीवन-प्रत्याशा, रोगों की बेहतर पहचान, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच, कानूनी जागरूकता, अपराधों की अधिक रिपोर्टिंग और सरकारी योजनाओं का विस्तार भी संख्याएँ बढ़ाते हैं।

फिर भी कुछ संकेतों को सामान्य बताकर अनदेखा नहीं किया जा सकता—मानसिक रोगों का विशाल उपचार-अंतर, वृद्ध-देखभाल का बढ़ता संस्थानीकरण, जेलों में क्षमता से अधिक बंदी, विचाराधीन कैदियों का अत्यधिक अनुपात और करोड़ों लंबित मुकदमे। ये आँकड़े बताते हैं कि हमारा भौतिक तथा संस्थागत विकास, सामाजिक और भावनात्मक विकास से आगे निकल गया है। हमने सुविधाएँ तो बढ़ाईं, लेकिन संबंधों, विश्वास, संवाद और सामुदायिक उत्तरदायित्व को उसी गति से मजबूत नहीं किया।

विकास का नया सामाजिक सूचकांक

सकल घरेलू उत्पाद के साथ एक व्यापक 'सामाजिक स्वास्थ्य सूचकांक' बनाया जाना चाहिए। इसमें निम्न प्रश्नों का उत्तर प्रतिवर्ष मापा जाए—

क्या लोगों के स्वस्थ जीवन-वर्ष बढ़ रहे हैं? क्या रोके जा सकने वाले रोग कम हो रहे हैं? क्या मानसिक रोगों का उपचार-अंतर घट रहा है? कितने बुजुर्ग अपनी इच्छा और गरिमा के साथ परिवार या समुदाय में रह पा रहे हैं? जेलों का अधिभोग कितना है? विचाराधीन कैदियों का अनुपात घटा या नहीं? अदालतों में नए मामलों की तुलना में निपटाए गए मामलों की संख्या कितनी है? दस वर्ष पुराने मामलों में कितनी कमी आई? पारिवारिक और सामुदायिक विवादों का कितना समाधान मध्यस्थता से हुआ?

इन मानकों में सुधार अस्पतालों, अदालतों और जेलों की केवल संख्या बढ़ाने से कहीं अधिक सच्चा विकास होगा।

आखिर हमारा समाज किस दिशा में जा रहा है?

भारत एक विरोधाभासी दिशा में आगे बढ़ रहा है। एक ओर चिकित्सा, कानून, संस्थागत देखभाल और डिजिटल न्याय की क्षमता बढ़ी है; दूसरी ओर बीमारी, मानसिक तनाव, पारिवारिक अकेलापन, कारागारों की भीड़ और न्यायिक विलंब हमारी सामाजिक संरचना की दरारें दिखा रहे हैं। हम समस्याओं को सँभालने वाले संस्थान तेजी से बना रहे हैं, लेकिन समस्याएँ पैदा न हों—ऐसा समाज उतनी तेजी से नहीं बना पा रहे।

सभ्यता की श्रेष्ठता इस बात से निर्धारित नहीं होनी चाहिए कि उसने कितने बड़े अस्पताल बनाए, बल्कि इससे कि उसने कितने लोगों को बीमार होने से बचाया। कसौटी यह नहीं कि वृद्धाश्रम कितने सुविधाजनक हैं, बल्कि यह कि वृद्ध कितना सम्मानित है। उपलब्धि यह नहीं कि जेल की दीवारें कितनी मजबूत हैं, बल्कि यह कि अपराध और अन्याय की ओर धकेलने वाली परिस्थितियाँ कितनी कमजोर हुईं। न्यायालय की भव्यता से अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि न्याय कितनी शीघ्रता और समानता से मिला।

विकास का अंतिम अर्थ मनुष्य को अकेला, भयभीत, बीमार और मुकदमेबाज बनाना नहीं, बल्कि स्वस्थ, संवेदनशील, सुरक्षित और संबंधों से समृद्ध बनाना है। यदि इमारतें ऊँची होती जाएँ और मनुष्य भीतर से छोटा होता जाए, तो उसे प्रगति नहीं कहा जा सकता। समाज की सही दिशा वह होगी जहाँ अस्पताल उपलब्ध हों, पर रोग कम हों; मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ सुलभ हों, पर मन अकेले न हों; वृद्धाश्रम सम्मानजनक हों, पर बुजुर्ग परित्यक्त न हों; जेलें सुरक्षित हों, पर खाली होती जाएँ; और अदालतें स्वतंत्र हों, पर न्याय के लिए पीढ़ियों तक प्रतीक्षा न करनी पड़े।

- डॉ. लोकेन्द्र सिंह कोट

लेखक परिचय

नाम – डॉ. लोकेन्द्र सिंह कोट

निवास – बड़नगर, जिला उज्जैन मध्यप्रदेश

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा शब्दशक्ति

www.antrashabdshakti.com

प्रकाशन एवं बहुद्देशीय संस्था

अन्तरा शब्दशक्ति
प्रकाशन

कलम की शक्ति, समाज की दिशा

सम्मान-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि

आ..... **डॉ. लोकेन्द्र सिंह कोट** .....जी

ने हिन्दी पखवाड़े के अवसर पर आयोजित "**एक लेख प्रतियोगिता**" में उत्साहपूर्वक सहभागिता करते हुए **समसामयिक विषय पर अपने विचारों को** प्रभावी एवं सार्थक ढंग से अभिव्यक्त किया।

उनकी साहित्यिक **अभिव्यक्ति** एवं रचनात्मक सहभागिता की सराहना करते हुए **अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन** की ओर से यह **सम्मान-पत्र** सादर प्रदान किया जाता है।

आपकी सृजनशीलता एवं साहित्यिक यात्रा के उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएँ।

हिन्दी विचारों को विस्तार देती है... समाज को जोड़ती है...

हिंदी
हमारी पहचान...
हमारी शक्ति...

प्रीति सुराना

समकित सुराना

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन एवं संस्था

डॉ. प्रीति समकित सुराना

शब्द से संवेदन तक... लेखन से परिवर्तन तक...